संपादकीय

शिक्षा के प्रति बढ़ती जागरूकता और प्रचार-प्रसार के बावजूद वक्त कुछ नई चुनौतियां पेश कर रहा है। एक तरफ शिक्षा के अधिकार कानून के माध्यम से सभी बच्चों को निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का मौलिक अधिकार प्राप्त हुआ है तो दूसरी तरफ बच्चों की अधिकांश आबादी को निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने वाले सरकारी स्कूल खस्ता हाल होते जा रहे हैं। बच्चों के माता-पिता/अभिभावकों की यह धारणा बनती जा रही है कि सरकारी स्कूलों में बच्चों को 'शिक्षा' मिल पाना लगभग नामुमकिन है। हाल ही में मुझे कुछ राजकीय और निजी स्कूल देखने का मौका मिला। इनमें से अधिकांश राजकीय स्कूल बच्चों के शिक्षण के लिए गरिमायुक्त न्यूनतम सुविधाएं भी उपलब्ध करवा पाने में असफल हैं। इन स्कूलों में सभी बच्चों के बैठने के लिए दरी-पट्टी/कुर्सी-टेबिल, पीने का पानी, टॉयलेट और कक्षा-कक्ष जैसी बुनियादी सुविधाएं भी नहीं हैं। बच्चे जमीन पर फटी-टूटी दरियों पर बैठते हैं। पानी या तो वे अपने घरों से लाते हैं या बीच-बीच में अपने घरों से पीकर आते हैं। बच्चों के लिए आमतौर पर टॉयलेट की जरूरत ही नहीं समझी जाती। जबकि शिक्षा के अधिकार कानून के क्रियान्वयन को तीन साल पूरे होने जा रहे हैं और तीन साल की तय समय सीमा में राज्य सरकारों को शिक्षा के अधिकार कानून के अधिकांश मानदण्डों को पूरा कर लेना चाहिए था लेकिन अभी भी सरकारी स्कूल इन्हें पूरा कर पाने से बहुत दूर हैं।

दरअसल, ये स्कूल जयपुर की पुरानी एवं सघन बसावट वाले इलाके में स्थित हैं और इन स्कूलों में नामांकन और उपस्थिति के लिहाज से बालिकाओं की संख्या ज्यादा है। शिक्षकों ने अपनी लाचारी व्यक्त करते हुए बताया कि पुरानी और सघन आबादी होने की वजह से स्कूल भवन के लिए जगह नहीं मिल पा रही है। इन आबादियों को देखकर किसी के भी दिमाग में शायद यही ख्याल आएगा कि ऐसी स्थितियों में कुछ किया ही नहीं जा सकता है! लेकिन यदि राज्य सभी बच्चों को सही मायने में शिक्षा प्रदान करने के लिए प्रतिबद्ध है तो क्या यह इतना चुनौतिपूर्ण कार्य है?

यह जाहिर है कि सरकारी स्कूल सिर्फ गरीब बच्चों की शिक्षा के केन्द्र रह गए हैं और अभी सरकारी स्कूलों की जैसी स्थिति है उसमें कहा जा सकता है कि गरीबों को 'गरीब शिक्षा' मुहैया करवा रहे हैं। अनेक बार लगता है कि ये स्कूल न होकर नियमित साक्षरता केन्द्र हैं। पिछले एक दशक में इसमें एक नया आयाम यह जुड़ गया है कि शहरी क्षेत्र में गरीबों में भी अधिकांश लड़कियां ही इन स्कूलों में जा रही हैं। जो भी माता-पिता अपने बच्चों की फीस आदि का थोड़ा भी खर्च वहन कर सकते हैं, वे अपने लड़कों को निजी स्कूल में भेजना चाहते हैं। यदि उन्हें लड़के और लड़की में से एक को निजी और दूसरे को सरकारी स्कूल में भेजने की प्राथमिकता तय करनी पड़े तो वे लड़के को निजी स्कूल में और लड़की को सरकारी स्कूल में भेजना चुनते हैं। यदि इन स्कूलों की गिरती हुई स्थिति में सुधार नहीं होता है तो इसका सबसे ज्यादा नुकसान बालिकाओं की शिक्षा को होने वाला है।

शिक्षा का अधिकार कानून प्रत्येक स्कूल के लिए न्यूनतम भौतिक सुविधाएं सुनिश्चित करने का वायदा करता है। साथ ही यह सुविधा प्रदान करता है कि यदि बच्चों को किसी स्थान विशेष पर समुचित व्यवस्थाएं उपलब्ध नहीं कराई जा सकती हैं तो बच्चों को यातायात की व्यवस्था मुहैया करवाए ताकि बच्चों को पढ़ने के लिए समुचित स्थितियां प्राप्त हो सकें। ऐसी स्थिति में प्रशासन के द्वारा यह निर्णय क्यों नहीं लिया जा सकता कि बच्चों को यातायात की सुविधा प्रदान कर उन आबादियों से थोड़ी दूरी पर शिक्षण की समुचित व्यवस्था सुनिश्चित की जाएं।

दूसरी तरफ निजी स्कूल हैं। इन्हें एक श्रेणी में बांटना भूल होगी। गली-मौहल्ले के तमाम निजी स्कूल भी शिक्षा के अधिकार कानून के मानदण्डों को पूरा करवा पाने में असमर्थ हैं। लेकिन बड़े निजी स्कूल अनेकानेक सुविधाएं देने के नाम पर बच्चों के माता-पिताओं को आकर्षित कर रहे हैं। शिक्षा की गुणवत्ता यहां भी प्रश्नों के दायरे में है। सभी निजी स्कूलों को शिक्षा के अधिकार कानून के बारे में बस इतना भर पता है कि 25 प्रतिशत बच्चों को प्रवेश देना है। इस कानून के शेष प्रावधानों के बारे में न तो उन्हें पता है और न ही इनसे उनका कोई वास्ता दिखाई देता है। इस कानून पर न तो सभी सरकारी शिक्षकों का और न ही निजी स्कूल के शिक्षकों का कोई प्रशिक्षण हुआ है। राजस्थान में प्रशासन की ओर से सभी निजी स्कूल के प्रधानाध्यापकों के लिए तीन घंटे का एक उन्मुखीकरण कार्यक्रम आयोजित किया गया था। लेकिन इस कानून के अनेक प्रावधान हरेक शिक्षक से जुड़े हैं। ऐसे में स्कूलों में बच्चों के अधिकार कितने सुनिश्चित हो पाएंगे, यह भी एक बड़ा सवाल है। बड़े निजी स्कूलों ने अपने यहां एक व्यक्ति को इसकी जिम्मेदारी

दे दी है जो कि सिर्फ 25 प्रतिशत बच्चों के प्रवेश के मामले देखता है। इस कानून के बारे में सरकारी अधिकारियों का भी ज्यादा ध्यान निजी स्कूलों में 25 प्रतिशत प्रवेशों को सुनिश्चित करने पर ही दिखाई देता है। हालांकि बड़े निजी स्कूलों में 25 प्रतिशत में हुए प्रवेशों की एक अलग ही कहानी निकलकर आ रही है। अपने अशैक्षिक कार्मिकों के बच्चों को ये स्कूल पहले भी निःशुल्क शिक्षा प्रदान करते थे लेकिन अब उन बच्चों को इसके दायरे में ले लिया है। अर्थात् जिन बच्चों को फायदा मिल सकता था, वे अब भी इनसे बाहर हैं। प्रशासन द्वारा सरकारी और निजी स्कूलों पर बराबर ध्यान दिए जाने और इस कानून के बारे में सभी शिक्षकों के प्रशिक्षण के माध्यम से ही इस कानून के सही क्रियान्वयन को सुनिश्चित किया जा सकता है। अन्यथा खानापूर्ति से अधिक कुछ हासिल होने वाला नहीं है।

****

श्री अनिल बोर्दिया आज हमारे बीच नहीं हैं। 78 वर्ष की आयु में 2 सितम्बर, 2012 को उनका देहावसान हुआ। प्रशासनिक सेवा का अधिकांश कार्यकाल उन्होंने शिक्षा में काम करते हुए बिताया। लोक जुम्बिश परियोजना के दौरान उन्होंने पूरे राजस्थान में शिक्षा के क्षेत्र में सक्रिय और उत्साहपूर्ण माहौल निर्मित किया। वे स्वयं इस परियोजना में लगातार सक्रिय रहे और स्वयं जाकर स्कूलों एवं सहज शिक्षा केन्द्रों का मुआयना करते। लोक जुम्बिश परियोजना के तहत उन्होंने कुछ अनूठे प्रयोग किए। गावं स्तर पर समस्याओं को चिन्हित करना, शिक्षकों को सतत अकादमिक समर्थन और निर्णय प्रक्रिया का विकेन्द्रीकरण उनमें से महत्त्वपूर्ण हैं। वास्तव में बोर्दिया जी के नेतृत्व में राजस्थान में शिक्षा के आन्दोलन का आगाज हुआ।

लोक जुम्बिश परियोजना में उन्होंने राजस्थान ही नहीं पूरे देश के शिक्षाविदों, शैक्षिक संस्थानों और शिक्षा में कार्यरत ऊर्जावान लोगों को जोड़ा। दिगन्तर ने भी लोक जुम्बिश परियोजना के साथ अनेक ब्लॉक में काम किया। अलवर के थानागाजी के ब्लॉक में एक बार बोर्दिया जी सहज शिक्षा केन्द्रों के मुआयने पर गए हुए थे। उस वक्त का एक संस्मरण एक केन्द्र पर कार्यरत हमारे एक साथी ने मुझे सुनाया। जब बोर्दिया जी उस केन्द्र पर पहुंचे तो बच्चे अपने-अपने काम में व्यस्त थे। बोर्दिया जी गणित पर काम कर रही एक लड़की के पास जाकर बैठ गए जो कि गणित में हासिल के जोड़ का अभ्यास कर रही थी। सवाल करते हुए उसने इकाई में इकाई जोड़ने के बाद इकाई संख्या के नीचे इकाई अंक लिखा और दहाई के ऊपर हासिल का एक लगा दिया और इसके बाद उसे दहाई के साथ जोड़ा। बोर्दिया जी ने पूछा, ''अरे! ये क्या किया? इसको तो यहां लिखा और इस एक को (हासिल को) यहां क्यों रखा?'' लड़की ने भी अपने देहाती अंदाज में सहजता से जवाब दिया, ''अरे! तेरे को इतना भी नहीं आता। ये इकाई में इकाई मिलने पर एक दहाई हो गया। इसलिए इस एक को दहाई के ऊपर लिखा है क्योंकि दहाई को दहाई में जोड़ते हैं।'' बोर्दिया जी ठठाकर हंस दिए। ऐसे मौकों का वे भरपूर आनन्द उठाते थे।

बोर्दिया जी किसी भी ऐसे कार्य के प्रति अपनी राय जरूर व्यक्त करते थे जो उन्हें अच्छा लगता। शिक्षा विमर्श के संपादन का काम मेरे लिए एकदम नया था। जब मैंने कुछ अंक प्रकाशित किए तो एक बार उन्होंने हस्तलिखित पत्र से शिक्षा विमर्श की तारीफ की और जब भी मिलते कहते, तुम अच्छा काम कर रहे हो। यह जानते हुए कि मेरी हौसला अफजाई कर रहे हैं, उनके कहने से एक आत्मविश्वास मिलता था।

लोक जुम्बिश परियोजना के बंद हो जाने के बाद बोर्दिया जी ने 'दूसरा दशक' के नाम से एक नया मोर्चा खोला और मृत्युपर्यन्त अथक काम करते रहे। वे दिगन्तर की सामान्य सभा के सदस्य थे। दिगन्तर की बंध्याली शाला जमीन विवाद के वक्त काफी चिंतित रहते और सरकार के शाला भूमि अधिग्रहण के निर्णय पर अपना विरोध जताने मंच पर आते रहे। उनके साथ काम करने वाले ही नहीं शिक्षा के क्षेत्र में काम करने वाले हरेक व्यक्ति को उनके जाने से धक्का लगा है। हम दिगन्तर परिवार की ओर से उन्हें श्रद्धांजली अर्पित करते हैं। ◆

दिगन्तर